

सम्पादकीय

आथक नात का राजनातक संदेश, ताकि देश के विकास को गति मिले और जनता भी संतुष्ट हो गत एक फरवरी को लोकसभा में बनियादी ढांचे के लिए पिछली

पुराणे दृष्टिकोण से यह लोकतानि पेशा आम बजट लोकलुभावन भी है और राजनीतिक भी। इस वजह से चाहकर भी विपक्ष उसकी तीखी आलोचना नहीं कर पा रहा है। सरकार विरोधी नैरेटिव रचने वाले वर्ग के तर्क भी भोथरे ज़रूर आ रहे हैं।

आरा एगारा जन बना। आज के बांग्लादेश, इसके पूर्व का पुराना

ने अपने पारंपरिक मतदाताओं को साथ रहने का गंभीर संदेश तो दिया ही है, तटस्थ नजर आ रहे मतदाताओं के बड़े वर्ग को भी बड़ा संकेत दिया है। संकेत यह कि मोदी सरकार को लेकर उनकी आशंकाएं निर्मल हैं कि यह सरकार उनका ध्यान नहीं रखती। मोदी सरकार का नारा है, 'सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास।' राजनीतिक नारों को लेकर मान्यता रही है कि वे सिर्फ मिथक होते हैं, जमीनी हकीकत नहीं। यह भी कहा जाता है कि राजनीतिक दल उनका इस्तेमाल अपने गोटरों की भावनाओं को उभारने में करते हैं और इसके जरिये वोटों की भरपूर फसल हासिल करते रहे हैं, लौकिक मोदी सरकार इस सौच को गलत साबित करती प्रतीत हो रही है। वित मंत्री निर्मला सीतारमण ने बजट के जरिये मोदी सरकार के इस नारे को जमीन पर उतारने की भरपूर कोशिश की है। भारतीय मतदाताओं में एक बड़ी हिस्सेदारी मध्य वर्ग की है। माना जा रहा था कि कुछ वर्षों से यह वर्ग मोदी सरकार से नाराज था। वैसे उसकी नाराजगी इतनी गंभीर भी नहीं थी कि वह प्रधानमंत्री मोदी से मूँह मोड़ ले। 2014 में यह वर्ग उम्मीदों से लबालब था तो 2019 में आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए मोदी के पक्ष में लामबंद रहा, मगर हाल के कुछ वर्षों में उसका थैर्य जवाब देने लगा था। आयकर में छूट सीमा तक तो नहीं लगती लेकिन उसके बाहरी भाग में यह वर्ग अपने अपने विविध विषयों पर अपनी विविध विवादों का विविध विवरण देता है। यहां ध्यान दिया जाना चाहिए कि भारतीय राजनीति का बड़ा आधार किसान भी रहा है। किसान आबादी में से करीब 82 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे या उसके आसपास है। बजट में इस वर्ग का भी ध्यान रखा गया है। किसान सम्मान निधि के तहत इस बार के बजट में पिछली बार की तुलना में करीब साढ़े छह प्रतिशत ज्यादा यानी साठ हजार करोड़ रुपये का प्रविधान किया गया है। इस मद में अब तक 11.4 करोड़ किसानों को 2.2 लाख करोड़ रुपये दिए जा चुके हैं। मोदी सरकार ने 2024 तक देश के गरीबों को छत मुहैया कराने का अपना लक्ष्य पूरा करना तय किया है। इसके तहत गरीबों को कुल दो करोड़ 94 लाख घर दिए जाने हैं। अब तक करीब 2.12 करोड़ घर दिए जा चुके हैं। प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत तैयार किए जा रहे इन घरों के लिए पिछली बार के 66 हजार करोड़ की तुलना में इस बार 79,500 करोड़ रुपये का प्रविधान किया गया है। जल जीवन योजना के लिए भी 70 हजार करोड़ रुपये का आवंटन किया गया है। गरीबों को स्वास्थ्य सुविधा देने वाली आयुष्मान योजना के लिए पिछली बार के 6,457 करोड़ की तुलना में इस बजट में 7,222 करोड़ रुपये का

बढ़ान का मांग का टालन का शायद पीएम मोदी और निर्मला सीतारमण को भान रहा होगा। इसी कारण बजट में आयकर की छूट सीमा बढ़ाकर सात लाख रुपय कर दी गई है। ऐसे में नौकरीपेश मध्य वर्ग का गदगद होना स्वाभाविक है। आयकर में छूट मिलने से संभावना है कि अपने पैसे का यह वर्ग उपयोग करेगा। इसकी वजह से बाजार में मुद्रा परिचालन बढ़ेगा, जिसका सीधा असर उत्पादन पर पड़ेगा। कह सकते हैं कि आयकर छूट का यह प्रस्ताव भारतीय आर्थिकी की मशीन में लुब्रिकेंट का काम करने जा रहा है। चुनावों में निम्न आयवर्ग के लोगों की भी बड़ी भूमिका होती है। बजट में इस वर्ग के लिए भी गंभीर संदेश है। भारत दुनिया की पांचवीं बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुका है। अब इसका लक्ष्य सात प्रतिशत की विकास दर हासिल करना है। ऐसे में रोजगार सृजन की अपार संभावनाएं बन सकती हैं। बजट में बार 7,200 कराड़ रुपय का आवंटन किया गया है। साफ़ है इनके जरिये जहां बाजार में पैसा पहुंचेगा, वहीं रोजगार और उत्पादन बढ़ेंगे। हालांकि मनरेगा के लिए में पिछली बार की तुलना में कटौती की गई है। जबकि अपनी शुरुआत के दौर से ही यह योजना गरीबों के लिए कल्याणकारी मानी गई है। हालांकि हकीकत यह भी है कि पिछले वर्ष सौ दिन के बजाय कहीं लोगों को 53 दिन तो कहीं 51 या पचास दिन ही काम मिले। इसके अलावा एकलव्य विद्यालयों के लिए 38,800 अध्यापकों की भर्ती का एलान आदिवासी वर्ग के गौरवबोध को बढ़ाने की दिशा में बड़ा कदम माना जा रहा है। बजट की अहम कोशिश यही है कि अमृतकाल में देश के विकास को गति मिले और सामाजिक-आर्थिक खांचों में बंटी जनसंख्या भी तुष्ट हो। पाकिस्तान और उसके भी पहले का भारत के अंग के इस क्षेत्र की स्थिति बड़ी अजीब रही है। प्राकृतिक आपदा खासकर बाढ़, भयंकर गरीबी, अशिक्षा सदा से इसके साथ रही है और काफी समय दमन-अत्याचार और राजनैतिक उथल-पुथल भी इस इलाके ने झेली है। मगर भाषा और संस्कृति के मामले में यह स्थान बहुत समृद्ध रहा है। इसका पूर्वी पाकिस्तान से बांगलादेश बनने में भाषा एक बड़ा कारण रही है। भारत विभाजन के पूर्व यह बंगाल का अंग था और पूर्वी बंगाल के नाम से जाना जाता था। भारत विभाजन के बाद यह पूर्वी पाकिस्तान कहलाया और दोनों हिस्सों में पर्याप्त दूरी के बावजूद पश्चिमी पाकिस्तान पूर्वी हिस्से पर हावी रहा। न केवल राजनैतिक रूप से बल्कि भाषा और सांस्कृतिक रूप से भी पूर्वी पाकिस्तान पर पश्चिम का दबाव

आजादी के 75 साल बाद भी मूलभूत के लिए तरस रहे सुल्तानपुर झरल ब

कहूँगा गाव ऐसे हैं, जहा के लोग मूलभूत सुविधाओं से वंचित हैं। विधानसभा नेत्र सुल्तानपुर लोधी में भी एक बस्ती यही है, जिसकी पंचायत के पास अपनी कहे जाने वाली एक इंच जमीन उक्त चर्ची है। शास्त्र के रेलवे स्टेशन विकास को मुख्यधारा से कासा दूर हैं। उनका जीवन नरक समान है। युवा कार्यकर्ता डा. सुरिदरपाल ने कहा कि गांव के लोग वर्षों से समस्याओं से जूझ रहे हैं। इन्हें सल्ला नीतनगराम के लिए कोई सचालत है, न हो सोबत का संभालने हेतु ट्रीटमेंट फ्लांट है। वातावरण प्रेमी संत बलबीर सिंह सीचेवाल ने रेलवे स्टेशन को गोद लेकर देसी ट्रीटमेंट फ्लांट की सुविधा प्राप्त विवास्थायें को दी थीं। वह से

गाव निवासियों का दायरा, तब से प्रशासनिक अधिकारी उससे ही काम चला रहे हैं। लोग बीमार स्वजन को चारपाई पर लेटाकर ले जाते हैं। शहर बस्ती निवासी बताते हैं कि शिक्षा की सुविधा के नाम पर तग गली में छोटा सा प्राइमरी स्कूल है।

कठिक सामने बसी सुल्तानपुर रुरल वर्स्टी के निवासियों ने बताया कि उनके घरों में आ रहा पानी भी पड़ोसी गांव डेरा सैयदां की टंकी पर निर्भर है। पेयजल समस्या लंबे समय से समाधान को लेकर प्यासी है। आलम प्रह है कि डेरा सैयदां में सरकारी पोटेटर चलने के बाद नलों से गंदा प्रौंर बदबूदार पानी आता है। लोग नलों को तब तक खुला छोड़ रखते हैं। जब तक पानी का रंग साफ न

सुविधा उपलब्ध नहीं हैं। उन्हें मताधिकार तो मिला है, लेकिन इसका फायदा चुनाव लड़ने वालों तक सीमित है। चुनाव जीतने के बाद विधायक-सांसदों को इस गांव की बेहतरी के लिए समय नहीं मिला। ये हालात यकायक नहीं बने, बल्कि गांव के अस्तित्व के बाद से ही उपेक्षा का दंश इस गांव के लोग भोगते आ रहे हैं। ग्रामीणों का कहना है कि इस गांव

है। यदि किसी घर में कोई बीमार पड़ जाए तो यहां पर एक डिस्पेंसरी तक नहीं। ऐसी स्थित में ग्रामीण ही अपने बीमार स्वजन को चारपाई पर लेटाकर उसे कंधे पर रखकर शहर की ओर भागते हैं। बात करने पर ग्रामीणों का आक्रोश भी सामने आ जाता है। उनका कहना है कि पंजाब सरकार द्वारा दर्जनों योजनाएं चलाई जा रहीं हैं। ग्राम विकास के दावे किए जा रहे हैं, लेकिन इनका लाभ भी सुल्तानपुर देहात के लोगों को नहीं मिला है। रेलवे की जमीन पर गंदी बस्ती में स्वच्छ भारत मिशन की दुर्दशा देखने को मिलती है। कूड़ा प्रबंधन की दम तोड़ती व्यवस्था गांव की गलियों, गिल्लां रोड और रेलवे की भूमि पर लगे गंदी के विशाल डंपों में दैखाई पड़ती है। कुछ इलाकों में पेयजल के लिए भूमिगत बिछाई गई पाइप लाइन गंदा पानी उगल रही हैं, जिस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो यह समस्या लोगों को बीमार कर भयंकर रूप

बांग्लादेश ने प्रारंभ से अपनी फिल्म बना रहा। अपनी भाषा को लेकर कर अत्याचार को दिखाया और नेशनल परस्कार जीते। आलमगीर जिसमें एक दृष्ट लड़के के कछ तमी साधना'.'मोने प्राणो प्राणे

बना रहा। अपना भाषा का लुकर हर व्यक्ति के मन में एक अलग लगाव होना स्वाभाविक बात है और जब कोई उसकी भाषा का अपमान करता है अथवा उसे नष्ट करने का प्रयास करता है तो यह हमारा कर्तव्य और भावात्मक दायित्व प्राकृतिक रूप उसे बचाने का होता है। बांग्लादेश के सिने-इतिहास की शुरुआत 1971 से पूर्वी पाकिस्तान क्रूर अत्याचार का दिखलागों से इसे रोकने की। मानव-संहार और न करने की इन घटनाओं आलोचना हुई थी। इस आने वाली यह पहली अंत सिने-पहल थी। 1971 में पाकिस्तान फ़िल्म डेट कॉरपोरेशन का नाम बांग्लादेश फ़िल्म डेट

या आरोग्यी अपील स्ल नष्ट की खुब देश से रक्षाएँ ही ईस्ट बलपरमेंट दल कर बलपरमेंट नशनल पुरस्कार जाता आलमगार कबीर ('धीरे बह मेघना', 'सूर्य कन्या' तथा परिणिता' आदि) और सुभाष दत्ता दो अन्य निर्देशकों ने इस दौरान युद्ध विषयक फिल्म बनाई। अस्सी और नब्बे के दशक में सिनेमा यहां के गरीब और कम शिक्षित लोगों के मनोरंजन का प्रमुख साधन बन गया। धनी-मानी लोग वीसीआर की ओर मुड़ गए। जिसमें एक दुष्ट लड़क के कुछ घटनाओं बाद सुधरने की बात दिखाई गई है। उन्हीं के उपन्यास पर बुलबुल अहमद ने 'राजलोखी-श्रीकातों' बनाई और उन्हीं की रचना पर मोहिंदीन फारुक ने 1988 में 'बिराज बोउ' बनाई। अस्सी और नब्बे का दशक को बांग्लादेशी फिल्मों का स्वर्ण युग माना जाता है। अब्दुर रज्जाक,

तुमा साधना, 'मान प्राण प्राण आओ तुमी', 'माटिर मोयना', 'चंद्रग्रहन'। 2010 में खिजिर हयात खान ने 'जागे' नाम से प्रथम स्पोर्ट आधारित फिल्म बनाई। भारत और बांग्लादेश सिनेमा भारत और बांग्लादेश के सिने-व्यक्तित्व मिलजुल कर काम करते हैं। 2016 में प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक गौतम घोष ने



पाकिस्तान और उसके भी पहले का भारत के अंग के इस क्षेत्र की स्थिति बड़ी अजीब रही है। प्राकृतिक आपदा खासकर बाढ़, भयंकर गरीबी, अशिक्षा सदा से इसके साथ रही है और काफी समय दमन-अत्याचार और राजनैतिक उथल-पुथल भी इस इलाके ने झोली है। मगर भाषा और संस्कृति के मामले में यह स्थान बहुत समृद्ध रहा है। इसका पूर्वी पाकिस्तान से बांगलादेश बनन में भाषा एक बड़ा कारण रही है। भारत विभाजन के पूर्व यह बंगाल का अंग था और पूर्वी बंगाल के नाम से जाना जाता था। भारत विभाजन के बाद यह पूर्वी पाकिस्तान कहलाया और दोनों हिस्सों में पर्याप्त दूरी के बावजूद पश्चिमी पाकिस्तान पूर्वी हिस्से पर हावी रहा। न केवल राजनैतिक रूप से बल्कि भाषा और सांस्कृतिक रूप से भी पूर्वी पाकिस्तान पर पश्चिम का दबाव

के लागों का अपनी भाषा, स्स्कौट्स और साहित्य-सिनेमा से बहुत गहरा लगाव है अतः उन्होंने अपने इस विरासत को बचाने के लिए जान की बाजी लगा दी। 1952 में बंगाली भाषा आंदोलन के दो वर्ष बाद ढाका में शहीदुल आलम अब्दुल जब्बर खान तथा कार्जुन नुरजामान की अगुआई में 'कोरोना' ऑपरेटिव फिल्म मेकर्स लिमिटेड की स्थापना हुई। और भी करारण थे, नवीजन 1971 में बांगलादेश का उदय हुआ। अतः जब हम बांगलादेश के सिनेमा इतिहास की बात कर रहे हैं तो 1971 से शुरुआत करती हूँ बांगलादेश मुक्त युद्ध के पूर्व 1970 में मात्र 6 फिल्में बांगला तथा दो उर्दू में रिलीज हुईं। ज़ाहिर रेहाम ने 20 मिनट की डॉक्यूमेंट्री 'स्टॉन जेनोसाइड' बनाई। इसमें उन्होंने 26 मार्च 1971 से 16 दिसम्बर 1971 के बीच पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा अपने देश की जनता पर हुए

कारपोरेशन कर दिया गया। सदी के पहले दशक तक मात्र प्रमुख फिल्म स्टूडिओ कलर लैंबथा। बांगलादेश से अपनी फिल्म की गणना निखारने का काम किया। करीब दो दशक में यहाँ 90 फिल्म बनने लगीं। विभाग के प्रमुख अब्दुल खान थे। कई फिल्में युद्ध और स्वाभाविक थीं। 1972 फुल लेच फीचर फिल्म एगारो जन' बनी। युद्ध इस ऐतिहासिक फिल्म के अल मसूद की है और मुस्तिकी की कहानी कहती इस पर निर्देशन कासी नज़रल (र्पण ईल्ट ईंट्स 11 : 1941-11 जनवरी 2015) किया। इन्हें 1986 में शार्क उपन्यास 'सुभदा' पर इसे से बांगला भाषा में फिल्म के लिए उस वर्ष के निर्देशक के साथ सा-

गा। 21वीं यही एक वर्षों तथा ने प्रारंभ किया जब बांगलादेश अपनी राष्ट्रीय पद्धति का बनाने के लिए सिनेमा का सहारा लेने लगा। फिल्म उद्योग मुख्य रूप से ढाका में था अतः यहां की फिल्में ‘ढाकीवुड’ (अंग्रेजी) के नाम से जानी जाने लगीं। काफी समय तक यहां की फिल्में न केवल भारत की फिल्मों से प्रभावित रहीं वरन् उनकी नकल भी करती रहीं। बांगलादेश के सिने-निर्देशकों ने अपनी विरासत को सौंदर्य स्मरण रखा है। बांगला साहित्याधारित सिनेमा तो प्रारंभ से बनता रहा है और आज भी यह जारी है। मुक्ति के बाद एक पहली अंतरराष्ट्रीय फिल्म है, ऋत्विक घटक की 1973 में बनी ‘तिस्ता एकटी नदीर नाम’ (‘नी ठिं ऊर्डी’) जिसमें प्रबीर मित्र ने मुख्य भूमिका निभाई है। इस फिल्म को 2002 में ब्रिटिश फिल्म इंस्टीट्यूट ने 10 सर्वोत्तम बांगलादेशी फिल्मों में शामिल किया है। शरतचंद्र की कहानी पर शाहिदुल अमीन ने ‘रामर सुमति’ बनाई। बांगलादेश अपनी राष्ट्रीय पद्धति का बनाने के लिए सिनेमा का सहारा लेने लगा। फिल्म उद्योग मुख्य रूप से ढाका में था अतः यहां की फिल्में ‘ढाकीवुड’ (अंग्रेजी) के नाम से जानी जाने लगीं। काफी समय तक यहां की फिल्में न केवल भारत की फिल्मों से प्रभावित रहीं वरन् उनकी नकल भी करती रहीं। बांगलादेश के सिने-निर्देशकों ने अपनी विरासत को सौंदर्य स्मरण रखा है। बांगला साहित्याधारित सिनेमा तो प्रारंभ से बनता रहा है और आज भी यह जारी है। मुक्ति के बाद एक पहली अंतरराष्ट्रीय फिल्म है, ऋत्विक घटक की 1973 में बनी ‘तिस्ता एकटी नदीर नाम’ (‘नी ठिं ऊर्डी’) जिसमें प्रबीर मित्र ने मुख्य भूमिका निभाई है। इस फिल्म को 2002 में ब्रिटिश फिल्म इंस्टीट्यूट ने 10 सर्वोत्तम बांगलादेशी फिल्मों में शामिल किया है। शरतचंद्र की कहानी पर शाहिदुल अमीन ने ‘रामर सुमति’ बनाई।

काबोरी सरवर, शबाना, फारुक, शबनम, रोज़ीना, चम्पा, अमल बो स इस दौर वें प्रसिद्ध अभिनेता-अभिनेत्री रहे हैं। आलमगीर कबीर, तन्वीर मोकाम्मल, तारक मसूद आदि इस देश में फिल्म में रियलिज्म तथा नेचुरलिज्म के वाहक रहे हैं। 8 मार्च 1955 को खुलना में जन्मे, सात पुरस्कारों से नवाजे गए लेखक-निर्देशक तन्वीर मोकाम्मल ने पती चर और डॉक्यूमेंट्री दोनों तरह की फिल्में बनाई। ‘नदीर नाम मधुमति’, ‘चित्रा नदीर पारे’, ‘लालशालू’, बायोपिक ‘लालन’, ‘रुपशा नदीर बैंके’ आदि उनकी प्रमुख फिल्में हैं। इनकी कई फिल्में यदू और पलायन से जुड़ी हुई हैं। बांगलादेश से इस सदी में आने वाली कुछ फिल्में हैं: ‘आमजन’, ‘प्रेमर ताजमहल’, ‘रॉना नंबर’, ‘इयामल छाया’, ‘प्रिया अमार प्रिया’, ‘तुमी स्वप्नो बांगलादेश के सहयोग (इम्प्रेस टेले फिल्म्स एंड आशीर्वाद चलचित्र) से और वहां के अभिनेताओं (कुसुम सिकदार, ममुनुर रशीद आदि) को लेकर ‘शंखचील’ बनाई जिसे क्षेत्रीय भाषा की फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। फिल्म दोनों देशों में रिलीज हुई। निर्देशक मुन्जुरुल इस्लाम मघ मेरे मित्र हैं अभी हाल में वे अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह गोआ में आए हुए थे। 2020 में ‘ऑपरेशन सून्दरबन’, ‘हवा’ जैसी सफल फिल्में यहां बनीं। आज बांगलादेश में 100 प्रोडक्शन हाउस हैं। ढाका इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल, बांगलादेश शॉर्ट फिल्म फोरम, इंटरनेशनल शॉर्ट एंड इडिपेडेन्ट फिल्म फेस्टिवल जैसे समारोह आयोजित होते हैं। इसके अपने कई पुरस्कार तथा फिल्म एड्युकेशन इंस्टीट्यूट हैं।

शरारत भरे शोध और सर्वेक्षण, कई पश्चिमी संस्थाएं
भारत को प्रगति करते हुए नहीं देखना चाहतीं

पाकिस्तान को दयनाय दशा किसी से छिपी नहीं। वह न केवल गंभीर आर्थिक संकट से पिरा है, बल्कि राजनीतिक और सुरक्षा संबंधी संकट से भी। औंसत पाकिस्तानियों के लिए जीवन-यापन करना दूरहर है। यह स्थिति लोगों को कमी नहीं थी, जो इस रिपोर्ट को सही मान रहे थे और सरकार पर तंज कस रहे थे। इससे भी हास्यास्पद रिपोर्ट आई थी वी-डेम की ओर से। इसमें यह बताया गया था कि अकादमिक स्वतंत्रता के मामले में पाकिस्तान और अभाव में दम तोड़ दिया था, लोकन दुनिया के अन्य देशों और यहां तक कि विकसित देशों में भी हालात कोई अच्छे नहीं थे। भारत से कहीं कम आबादी और बेहतर स्वास्थ्य ढांचे गाले विकसित देशों में भी लोग उपचार के अभाव में दम तोड़ रहे थे प्रमाण रह-रहकर मिलते ही रहते हैं। एक प्रमाण यूक्रेन युद्ध शुरू होने के समय मिला था और एक हाल में गुजरात दंगों पर बीबीसी की डाक्यूमेंट्री के रूप में सामने आया। समझना कठिन है कि सरकार को उस पर प्रतिबंध लगाने

रातोंरात नहीं बनी, लेकिन पिछले वर्ष मार्च में जारी वर्ल्ड हैपीनेस रिपोर्ट में पाकिस्तान को भारत से खुशहाल बताया गया था। इस हैपीनेस इंडेक्स में भारत को 136वें पर पायदान दिखाया गया था और पाकिस्तान को 121वें पर। इस रिपोर्ट पर राहुल गांधी समेत कई विपक्षी नेताओं की बांधें खिल गई थीं। उन्होंने सरकार पर जमकर कटाक्ष किए थे। ऐसे ही कटाक्ष तब किए गए थे, जब ग्लोबल हंगर इंडेक्स की रिपोर्ट में यह कहा गया था कि भारत की स्थिति पाकिस्तान और श्रीलंका से भी खराब है। यह रिपोर्ट उन्हीं दिनों आई थी, जब पाकिस्तान में खाद्यान्न संकट खड़ा हो रहा था और श्रीलंका में खाने-पीने की वस्तुओं की किल्लत के कारण हाहाकार मचा हुआ था। इसी तरह की एक रिपोर्ट प्रेस फ्रीडम यानी मीडिया की स्वतंत्रता के मामले में रिपोर्टर्स विदाउट बार्डर्स की ओर से आई थी। इसमें भारत को संयुक्त अरब अमीरात, जहां कोई निजी मीडिया नहीं और चीन के दमन से त्रस्त हांगकांग से भी नीचे दिखाया गया था। इसे बेशर्मी के अलावा और कुछ नहीं कहा जा सकता।

अफगानिस्तान की स्थिति भारत से बेहतर है। निःसंदेह खुशहाली, और लाशों के ढेर लगे हुए थे, लेकिन पश्चिमी मीडिया ने ऐसा कुछ की क्यों सूझी, क्योंकि इससे उसे अनावश्यक प्रचार ही मिला। अब यह कोई दबी छिपी बात नहीं कि पश्चिमी मीडिया के एक हिस्से के साथ वहाँ की तमाम संस्थाएं भारत को प्रगति करते हुए नहीं देखना चाहतीं। पश्चिमी संस्थाओं के भारत को नीचा दिखाने वाले जो शरारती शोध एवं सर्वेक्षण आते रहते हैं, उनमें यही संदेश निहित होता है कि वे विश्व मंच पर भारत का उभार नहीं देखना चाहते। गौर करें कि घोर अराजक कृषि कानून विरोधी अंदोलन के दौरान पश्चिमी देश और उनका मीडिया किस तरह भारत को नसीहत दे रहा था, लेकिन तब उनकी बोलती बंद हो गई थी, जब कनाडा सरकार ने आपातकाल लगाकर ट्रक चालकों की हड्डियां बल्पूर्वक खत्म की थीं। अभी पिछले महीने जर्मनी में कोयला खदान के विस्तार के लिए एक गंव को उजाइने के विरोध में धरने पर बैठे पर्यावरण कार्यकर्ताओं को द्विरासत में ले लिया गया। पुलिस ने ग्रेटा थनबर्ग समेत इन कार्यकर्ताओं को चेतावनी दी कि यदि वे खदान के किनारे से नहीं हटे तो उन्हें



के मामले में भारत में सब कुछ सही नहीं, लेकिन यह मान लेना हास्यास्पद है कि भारत की स्थिति पाकिस्तान, अफगानिस्तान आदि से भी खराब है। केवल कथित शोध संस्थानों से ही ऐसे सूचकांक नहीं जारी होते, जो भारत को नीचा दिखाते हैं, पश्चिमी मीडिया का एक हिस्सा भी यह बताता रहता है कि भारत में सब कुछ गया-बीता है। याद करें कि कोरोना काल में पश्चिमी मीडिया भारत की कैसी दयनीय और भयानक तस्वीर पेश कर रहा था। यह सही है कि कोरोना की दूसरी लहर के दौरान स्थिति खराब हो गई है, लेकिन इसका उल्लंघन किसी को फोटो छाप रहा था, लेकिन यूरोप और अमेरिका में कोरोना से मरे किसी भी व्यक्ति की फोटो नहीं दे रहा था। पश्चिमी मीडिया ने नीतिगत रूप से दोहरे मापदंड बना रखे हैं। पश्चिमी देशों में आतंक, आपदा से मरे लोगों के फोटो नहीं दिखाए जाते, लेकिन अन्य देशों में आतंक, आपदा से मरे लोगों के फोटो दिखाने में कोई संकोच नहीं किया जाता। यही कारण है कि दुनिया ने 9-11 हमले में मरे गए किसी व्यक्ति का शब नहीं देखा। पश्चिमी मीडिया गैर-पश्चिमी देशों के प्रति किस तरह और उनका मीडिया किस तरह भारत को नसीहत दे रहा था, लेकिन तब उनकी बोलती बंद हो गई थी, जब कनाडा सरकार ने आपातकाल लगाकर ट्रूक चालकों की हड्डियां बलपूर्वक खत्म की थीं। अभी पिछले महीने जर्मनी में कोयला खदान के विस्तार के लिए एक गांव को उजाइने के विरोध में धरने पर बैठे पर्यावरण कार्यकर्ताओं को हिरासत में ले लिया गया। पुलिस ने ग्रेटा थनबर्गर समेत इन कार्यकर्ताओं को चेतावनी दी कि यदि वे खदान के किनारे से नहीं हटे तो उन्हें

